चट्टानों का जलगीत

भले ही यह तथ्य अजीब लगे लेकिन यह सही है कि प्रत्येक क्रांतिकारी कुछ भी होने से पहले प्रेमी होता है।

—चे ग्वेवारा

चट्टानों का जलगीत

वेणु गोपाल



शीर्षक प्रकाशन
गढ रोड, हापुड-245101

चट्टानों का जलगीत
(कविता संग्रह)

प्रथम संस्करण 1980
द्वितीय संस्करण 1981

मूल्य 30.00

प्रकाशक
शीर्षक प्रकाशन
गढ़ रोड, हापुड़ 245101

आवरण सुरेन्द्र राजन्
विभाजन पृष्ठ
एक व दो भाऊ समर्थ
तीन व चार जयन्त देशमुख

मुद्रक
शान प्रिंटर्स
शाहदरा दिल्ली 110032

SHIRSHAK PRAKASHAN
CHATTANON KA JALGEET
Poetry by Venu Gopal
First Edition 1980
Second Edition 1981
Rs 30.00

उन आखो के लिए
जो
मपने देखती ह ।

कविता-क्रम

वक्त होता हुआ—चेहरा

उड़ते हुए/हर हाल में बेजोड़/भविष्य / मेरे साथ / घर लौटते हुए/समारम्भ/तैयारी/जवाब देना है/उपजाऊ थकान/जेठ का महीना/साल की आखिरी रात/यात्री भूमिका में/मेरा वर्तमान/फूल (एक)/फूल (दो)/फूल (तीन) / पत्थरों में गोताखोरी (एक) / पत्थरों में गोताखोरी (दो)/पत्थरों में गोताखोरी (तीन)/पत्थरों में गोताखोरी (चार)।

यही समय है—प्यार !

कविता की ओर/पुकार/मेरी परछाई/याद (एक)/याद (दो)/बीच में समंदर/उपाय/सृष्टि का पहला क्षण/मुसीबत की घड़ियों में/जिस्म और सपने/बचाव/एक अधूरी बातचीत/हासिल कर लेता हूं / प्यार का वक्त/जब हम तुम मिले (एक)/जब हम तुम मिले (दो) / जब हम तुम मिले (तीन)/जब हम तुम मिले (चार)।

आइना होते हैं—दोस्त !

खुद अपनी ही प्रतीक्षा में/गोया आइने में चले गये हो।

मेरे सामने है—वह !

ब्लैकमेलर

[इस संकलन में 'टनकमलर' शामिल की गयी है। यह 1971 के उत्तरार्ध में लिखित तीन लम्बी कविताओं में से एक है। 'जंगल-गाथा', 'यह तो युद्ध है' और 'टनकमलर'। इन तीनों को एक-दूसरे का पूरक माना जाय।]

कविता

कविता गुस्सा है तो भी नफरत है तो भी लगाव है अपनापा है प्रेम है जिन्दगी कितनी ज्यादा जिन्दगी कितनी ज्यादा अपनी कविता के साथ जमीन थिरकती हुई चट्टानें गाती हुईं जगल झूमता हुआ समन्दर उमडता हुआ आसमान ताजगी से भरपूर फूलो के तोतले बोल और ये सब के सब कविता होते हुए लेकिन कविता तो भाषा म होती है ये सब के सब भाषा म प्रवेश करते हुए पर कविता भाषा भर तो नही होती—ये सब के सब शब्दो मे और उनके अर्थों म पहुचते हुए पर कविता शब्द और अर्थ भर तो नही होती फिर क्या होती है ? सपना अर्थ और शब्द म पहले उनकी जमीन उनकी मा उन्हे जन्म देने वाली सपना की जमीन ।

और सपने ? कविता की जमीन हा, वही प्रेम जो एक लडाई लडाई का नतीजा लडाई की प्रेरणा लडाई का मकसद कविता बेहतरी के लिए होती है बदतरी के खिलाफ सपनो के दुश्मनो की दुश्मन पसीने म लथपथ, मिट्टी सने हाथो म हल की मूठ ही हमेशा क्यो ? कभी फूल भी तो और कविता उस भावी फूल म तब्दील होती हुई कारखाने से लौटते मजदूर के चेहरे पर मुर्दानगी ही नही मुस्कान भी तो और कविता उस मुस्कान से एकमेक होती हुई लेनिन ने कहा था क्या कहा था लेनिन ने ? सपने देखने चाहिए लेनिन ने खुद कैसा सपना देखा लेनिन कवि था सपने देखता था इसीलिए लेनिन था सपने देखना कितनी मुश्किल कला हर कविता का प्रेम कविता बना देती है प्रेम राजनीतिक होना है प्रेम कविता राजनीतिक कविता होती है जब कवि खुद राजनीतिक सर से पाव तक तो

उसका प्रेम क्या नहीं ? उसकी कविता कैसे नहीं ? अपने हँसने में, रोने में, विलाप में, आलाप में, निराशा में, आशा में किस में नहीं होता वह राजनीतिक ? लेकिन क्या राजनीतिक कविता प्रेम कविता नहीं होती ? जब कवि प्रेमी और इसीलिए राजनीतिक भी तो ? पर एक परिवार भी एक समाज भी एकदम जड़ रुके हुए और रोकते हुए नहीं चाहते कि तिनका भी इधर से उधर हो जाये सम्पत्ति-केन्द्रित उसका हर आयाम और परिवार और समाज ही कवि को प्रेम सिखाते हैं सपने देखना सिखाते हैं और नहीं चाहता कवि टुकड़े टुकड़े होना पर होता है नहीं चाहता वह आसपास का टुकड़े-टुकड़े करके देखना पर देखता है कविता को अपने से अलग करके अपने को पाठक से अलग करके प्रेम को राजनीति से अलग करके और नतीजा ? कवि टूटता चला जाता है सचमुच उनका गुलाम बन जाता है जो उन टुकड़ा-टुकड़ा में काटते ही इसीलिए हैं कि वह गुलाम बना रहे वह टुकड़े टुकड़े करने लगता है हर इकाई को और अलग अलग देखता है इस वाद से उस वाद को इस आन्दोलन से उस आन्दोलन को इस कविता से उस कविता को और वे आका लोग नहीं जानने देते कि निराला की 'सरोज स्मृति' एक क्रांतिकारी कविता भी है कि शमशेर की 'टूटी हुई बिखरी हुई' एक राजनीतिक कविता भी है कि मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' एक प्रेम कविता भी है क्या हर क्रांतिकारी पहले प्रेमी नहीं होता ? क्या वह इसीलिए क्रांतिकारी नहीं होता कि वह प्रेमी होता है ? क्या हर प्रेमी राजनीतिक नहीं होता ? क्या वह इसीलिए प्रेमी नहीं होता कि वह राजनीतिक होता है ? और क्या इसीलिए कवि नहीं होता कि वह क्रांतिकारी होता है प्रेमी होता है राजनीतिक होता है ? क्या क्या नहीं होता कवि ? एक मैं एक शरीर एक परिवार एक समाज एक देश एक भाषा और जब कवि अपना सब होना देखता है तो कविता होती है यह सब होने के प्रति प्रेम का इज़हार लेकिन यह सब होने में ज़हर भी इन सब में व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा पर टिकी हुई इमारत मैं परिवार का एक अदना एजेण्ट परिवार समाज का और आगे भी इसी तरह उस इमारत तक और सब कुछ संस्कृति, सभ्यता, काल, दिक् वही इमारत क्या कविता भी एक अदना एजेण्ट नहीं होती उस हद तक, जिस हद तक संतुष्ट भाषा में संतुष्ट अभिव्यक्ति होती है ? क्या उस हद तक प्रतिक्रियावादी ज़हर में बुझी संरचना नहीं होती जिस हद तक वह एक अदना एजेण्ट भर होती

है ? अपने सन्तुष्ट होने म सन्तुष्ट लडती हुई नही अपने से अपन होने मे बेहतरी के लिए अपनी बेहतरी और आसपास की बेहतरी और लडाई म शब्द अपारदर्शी नही रह जाते मजदूर, किसान क्रांति जैसे शब्द कवि इन शब्दो के पार देखता हुआ प्रेम कविता सपन तो क्या कविता वैसी ही युद्ध-भाषा नही है, जैसी स्वप्न भाषा है ?

क्या वैसी ही समर सन्देश नही है, जैसी प्रणय सन्देश है ? बहुत जरूरी है कविता जीने के लिए एक बुनियादी जरूरत रोटी, कपडा और मकान की तरह उनके बाद लेकिन उसी कतार म पिछली कतार म हरगिज नही रोटी, कपडा, मकान और कविता इस तरह लिखी जानी चाहिए बुनियादी जरूरतो की सूची कविता कवि की जिजीविषा भरी पूरी दुनिया म होना और इस होने को बनाये रखने के लिए जीना बहुत बहुत खूबसूरत कविता वही खूबसूरती पर ये क्या ?

यह हिटलर, यह जगज, यह और कविता एक जहाद इनके खिलाफ यह खिलाफत यह जेहाद अपने आप म खूबसूरत और कविता की खूबसूरती म चार चाद लगाता हुआ यह वक्त क्या उसी खूबसूरती का वक्त नही है ? बीसवी सदी कहने से तो कुछ भी साफ नही होता यह तो कलण्डर का वक्त है कैलेण्डर भी घडी का वक्त होता है कविता किसी खास दिन, किसी खास महीने, किसी खास वय की होती हुई भी उनके परे अपने होने म प्रेम का वक्त है सपने का वक्त है प्रेमी के मुताबिक स्वप्न दर्शी के मुताबिक घटती बढती कविता अतीत म नही होती हमेशा वतमान म होती है एक हाथ से अतीत की उगली थाम और दूसरे से भविष्य की दोनो को वतमान म चलाती हुई काल के परे जाती हुई क्या यह नजारा मार्क्स ने देखा था ? लेनिन ने देखा था ? जरूर देखा होगा उन्होने जो भी कुछ किया कविता के लिए किया क्या आज भी कोई मार्क्सवादी जो कुछ करता है, कविता के लिए नही करता ? सपना के लिए नही करता ? उनके लिए लडता हुआ सिपाही, कवि होता है, क्रातिकारी होता है और मार्क्सवादी होता है । क्राति और कविता और मार्क्सवाद किसी किताब मे नही क्योकि लडाई किसी किताब म नही लडाई आचरण है मार्क्सवाद आचरण है कविता आचरण है क्राति आचरण है और अगर ऐसा नही तो कुछ भी नही

लडती हुई कविता जेहाद करता सपना ये अकेले नही है करोडो आखें है जो भाषा से दूर है भाषा म कविता को नही पहचानती सपने को नही पढ सकती पर जो सपने देखती है सपना

ये दुश्मनों के खिलाफ जेहाद की लपट उनमें कौंध-कौंध जाती है वे आँखें व करोड़ों आँखें एक दिन भाषा को जानेंगी भाषा में कविता को पहचानेंगी प्रेम को देखेंगी सपनों से मिलेंगी और खुशी से लबालब हो जायेंगी— कि यह भी हमारी ही जिंदगी है।"

28 जुलाई
हैदराबाद

वेणु गोपाल

वक्त होता हुआ—चेहरा

उडते हुए

कभी
अपने नवजात पखो को देखता हू
कभी आकाश को

उडते हुए।

लेकिन ऋणी मैं फिर भी
जमीन का हू

जहा
तब भी था—जब पखहीन था
तब भी रहूगा जब पख झर जाएगे।

5 1 78

हर हाल मे बेजोड

तिनका हू—सूखता हुआ। लेकिन
फिर भी

जगल का एक बेजोड हिस्सा। जब
हरा भरा होन म था

तो
सूखन म भी हू।

6 10 75

भविष्य

मजबूत घोड़ों की तरह
दौड़ रही हैं
जड़ें

और
सवेरा है
हर तरफ

गोया घने जंगलों का बिम्ब
उभर आया हो
आकाश में।

22 3 80

मेरे साथ

सतह से मैंने सिर ऊपर उठाया
तो खामोशी किस कदर हंस रही है !

मैं बस के पायदान पर लटक के
यहां से कहां जा रहा हूं ?

रविशंकर के सितार को
क्या कुछ और बुलंद नहीं हो जाना चाहिए था
लोरी सुनाते वक्त ?

तब
मैं
आकाश का
नीलापन तो नहीं हो जाता

और
स्टेज पर
अंधेरा तो नहीं छा जाता
खलनायक के आते ही।

मेरा
घर ही था
जो
रहा
मेरे साथ

ठेमे में।

4 8 71

घर लौटते हुए

माफी मागती दीवारें बार-बार
फिर भी घर बनाती बिगाड़ती
मेरे आसपास। मैं
आकाश होने को जमीन हो जाता हू
और
गमलों की जगहें बदलता हुआ
इतना प्रसन्न-गुनगुनाता हू कि दीवारों पर
नया पलस्तर लग जाता है।

सड़क घर से ज्यादा दूर नही है
फिर भी वह
अपने आप म
पूरी सड़क है—चलती हुई, गुजान।
और
घर है कि रुका हुआ, सुनसान।
मेरा
सारा का सारा शोर शराबा
उस सुनसान मे
सेंध लगाने मे
नाकामियाब होता हुआ। हमेशा।
फिर भी बाज नहीं आता
अपनी हरकत से।

घर मेरे साथ हमेशा रहता है। मैं
चाहे जिस सड़क पर, चाहे जहा रहू।
कभी जेब से
फुदक कर बाहर आता हुआ तो कभी

पीठ पर ग
कॉम्रोच की तरह गुजरता हुग्रा।
भटकारने भटकारन तक
फाना पर चीटी की तरह काट खाता हुग्रा।

एक
सनातन डेरा बना रखा है मेरे घर न।
मर नजूद पर।
ग्रौर मैं
मार सैकडा सडका को रौंदता हुग्रा
घर को ही ढोया करता हू। दरग्रसल।
उससे दूर भागन की कोशिश मे
दुनिया जहान की सैर कराता हुग्रा उस।

शाम जगल म होती है तो भी मा की
डाट सुन लेता हू।
रात होती है तो पत्नी का बुलावा
हस्बे मामूल।
ग्रौर
सवेरे सवेर पिताजी का देवी स्तोत्र। ग्रौर

जगल घर हो गया ह तो ग्रब घर ही लौट रहा हू।
लौटन म कविता हो रही ह।
पहुच जाऊगा तो पूरी हो जायेगी। ग्रौर
दीवारा को माफी मिल जायगी ग्राखिरकार
घर एक बारगी वन ही तो जायगा
या फिर बिगड जायेगा—हमेशा के लिए।

4 10 75

समारम्भ

घर नींव म है। बीज म पेड होता है ज्यों।
घर भूमिका है। रिश्तों का पूर्व कथन।

एक निश्चय है मुसकुराता हुआ
हाथों के हाथ—धर्म निभाने की
शुरुआत करता हुआ।

अभी थोडी देर म पसीना टपकने लगेगा
तो एक ऐसा आँगन बन जायेगा
जिसम फूल ही फूल बिखरे होंगे।

होठों से श्रम गीत भी
बस फूटने ही वाला है और
तब
बनती हुई अँधेरी सीढ़ियाँ
छत की ओर जाते जाते
ऐन बीच म
इन्द्रधनुष बन जायेंगी।

ऐसा इन्द्रधनुष
जो आज से कल के बीच म
पुल धर्म निभायेगा।

एक विराट झुनझुनाहट जारी हो चुकी है।
चारों ओर। लोग, बस जागने ही वाले हैं।

5 1 79

तैयारी

मैं
आजकल एक काम कर रहा हूं
कि खुद को ठोक पीटकर तैयार कर रहा हूं
क्योंकि

अब तक के सफर का हासिल तो यह है
कि जितने भी रास्ते थे—सबका
जायज़ा लिया और जान गया
कि सब एक ही जगह पहुंचाते हैं
मतलब—समंदर तक
तो

अब आगे का सफर
समंदर में करना
है
इसलिए
सबसे पहले
यह कर रहा हूं
कि खुद को तैयार कर रहा हूं
समंदर के लिए
और

इस तरह
खुद को नाव नुमा बनाना
मेरी मजबूरी है—कोई शौक नहीं है
पीठ कड़ी हाथ चप्पुओं का काम कर सकें
और आंखें
मौका आने पर कुतुबनुमा की भूमिका निभा दें

कि किधर उत्तर किधर दक्षिण

मुझे किस दिशा में जाना है—यह तो
ठीक ठीक नहीं मालूम
लेकिन किस दिशा में जा रहा हूँ
यह तो मालूम कर ही सकता हूँ

सुना है
कि समंदर में मगर और नाक और पता नहीं
कौन-कौन जानवर रहते हैं
तो
बचाव की तैयारी जरूरी है
इसलिए —

दाँतों को इस कदर मजबूत बना रहा हूँ
कि मौका पड़े तो मगर की पीठ में गड़ जाएँ
और पंजों को इस लायक
कि नाक की गरदन जकड़ लें
तो उसे फरिश्ते याद आ जाएँ
और सुना है

कि वहाँ मीलों तक पानी ही पानी होता है
न आदमी न आदमजाद
सिर्फ अकेलापन
तो

ढेर सारी कविताएँ लिख रहा हूँ
जिन्हें गाऊँगा, गाता रहूँगा
और हवा में गूँजती हुई मेरी आवाज़
मेरे अकेलेपन को
खतम कर देगी
तो —

इस तरह
आजकल मैं सिर्फ एक ही काम कर रहा हूं
कि अपने को तैयार कर रहा हूं
समंदरी सफर के लिए।

10 10 71

जवाब देना है

जवाब देना है
किसी ऐरे गैरे का नहीं
बल्कि मुझे समंदर का जवाब देना है।

जिस धरती के टुकड़े पर खड़ा हूँ इस वक्त
उसे ही
दरवाजे की तरह खोलकर
झांकता हूँ—बाहर भी धरती ही है।

'जमा-पूंजी कितनी है ?' खुद से पूछता हूँ
और गुल्लक फोड़कर
वे सारे खनखनाते दिन निकाल लेता हूँ
जो
नदियों ने दिये थे। समंदर के लिए।

वे
सारे के सारे दिन
रंगीन पारदर्शियों की तरह हैं
जिन्हें
धरती के परदे पर
प्रोजेक्ट करता हूँ
तो दिखती रहती है

अपनी ही टुकड़ा-टुकड़ा जिम्मेदारियों में
बंटी एक टुकड़ा-टुकड़ा जिन्दगी
दिखती है

बिस्तर म दूर नींद
आती हुई
आखा स दूर पलकें
मुदती हुई
पावो स दूर यात्राए
सम्पन्न होती हुए
और हाठा म दूर उच्चारण
शब्दा से जुडते हुए

कुल मिलाकर
एक फटी फटी किताब की
पचास साठ पन्ना वाली कथा हलचल।

इसी के सहारे लिखना है
        मुझे अपना जवाब।
देना है जिसे समदर को—

और समदर
बेताब होगा।
जरूर इतजार कर रहा होगा।
        मेरा।

20 5 78

उपजाऊ थकान

थकान अगर उपजाऊ हो
तो तीर का निशान बनाती है
'जिन्दगी इधर है।'

अभी अभी उसकी पत टूटी है
और दूब ने आखें खोलकर
झाककर
इस दुनिया को देखा है। मैं
उस अपनी जिन्दगी म शामिल करना चाहता ह
इसलिए
कागज कलम लेकर
तैयार हो गया हू।

एसा जब जब भी होता है
तब तब सुबह हो रही होती है
किसी भी और सुबह से
बिल्कुल अलग।

दूब
ऐसे म आईना होती है
जिसम
मैं
अपन चेहरे को
सवत
होता हुआ पाता हू।

दूब के सिरा पर
एक हरा-सच्च भविष्य

ठहरा हुआ है। मर
अक्स व सहारे
झिलमिलाता हुआ। माना
ओस की बूद म
सूरज न
अवतार लिया हो।

एस म
दूब व सिर
सूरजयान आवाग हा गय हैं।

यथान
मा निगाहा से दख रही
है यह सब।
प्रम न आश्वस्ति म
मुस्कुराती हुई

कि उसकी सतानें
जिदगी तक
पहुच ही जायेंगी
आखिरकार।

13 8 78

जेठ का महीना

हासिल करनी है मुझे
अपनी ही चमडी
और खायी हुई
ताम्बई सच्चाई ।

आज तक
कधो पर
कितन कितने
अजनबी मौसमो को
लाद

लिखता रहा हू मै
हर अधेर पर
सूरज का निमत्रण पत्र तब

जाकर कही आया है
अब
यह जेठ का महीना । बहुत बहुत
गम जोशी से
मिलन । मेरे
बेपर्द जिस्म का दन
मेरी ही चमडी

और
उस पर निखन
खायी हुई ताम्बई सच्चाई ।

22 11 75

साल की आखिरी रात

एक छलांग
लगायी है
उजाले ने

अंधेरे के पार,
पाव
हवा मे—

और
मैं
अपनी डायरी पर
झुका हुआ

उसके
धरती छूने का
इंतजार
करता

□

रात के बारह बजने मे
अभी
काफी देर है।

31 12 71

यात्री-भूमिका मे

न सगीत न बिस्तर न खिडकी न आगन
कुछ भी तो दूर नही है इस घडी लेकिन
रास्ता है कि बहुत बहुत लम्बा
दीख पडता
पैरो मे जुडा और
आगे और
न जाने
कितने तो मोडा कितने तो चढावो कितने
तो जगला और कितने तो मैदानो वाला

और
जिन्दगी को
पूर्ण विराम की खडी पाई की तरह
रख लिया मैंने
खुद के सामने
हमेशा के लिए ।

हालांकि
पहली बार अपने घर मे पहुच जाने
और
उसकी क्लोरोफार्म-सी गध को नथुनो मे
खूब खूब भरकर
बेहोश होने की भूमिका म । या जिन्दगी की
मेरॉथन दौड म
बार-बार पिछडता हुआ भी
मैं
रोक नही पाया था
खुद को

वक्त क मामने पडकर
ग्रध या ग्र-प विराम म दरा जाने से।

कभी जिस्म ता
कभी धडकनें तो
कभी दिमाग

सबके सब
रुकावट भ रूपातरित हुए हैं ग्रौर
तब चीजें ग्रौर ग्रौर पास ग्रायी हैं—
ग्राती चली गयी हैं
पीठ पर लद गयी है—

इस तरह
कि मध मुक्त नहीं हा सकता ग्रब। लाख चाहू।
मरा

रोशनी या ग्रधेर म हाना
प्रकाश व्यवस्थापक की मेहरबानी पर
मुनस्सिर ह

तो
सम्वाद
मैं रट हुए बोलता हू—ग्रौर वे भी
प्राम्प्टर के सहारे।

जि दगी वितान के इस ग्रभिनय म
कई मौके ऐसे ग्राए है
कि किनारे क पेडो ने तालिया बजाने
बस मोर कहा है ग्रौर

मैं फूलकर कुप्पा हुग्रा हू ग्रौर
किसी खास सम्वाद या ग्रभिनय
को दुगुनी मार्मिकता से दुहराया है।

कमरा ह ग्रौर उसम सकडा हजारो मील
लम्बा रास्ता है जो ग्रगली या पिछली या

या बायीं दीवार तक पहुचकर
मंजिल का एक अतियथार्थवादी शैली में
चित्र बनाता हुआ
खत्म होता है और

मैं हू । यात्री भूमिका का
सफलतापूर्वक निर्वाह करता । अपनी
कुर्सी या चौकी से चिपका ।

और सगीत और बिस्तर और खिडकी
और आगन की दूरी
मापता और मापता और मापता हुआ ।

9 11 75

मेरा वर्तमान

मैं फूल नही हो सका। बगीचों म
घिरे रहने के बावजूद। उनकी

हकीकत जान लेने के बाद
यह
मुमकिन भी नही था। या
अनगिन फूल हैं यहां। लेकिन
मुस्कुराता हुआ कोई नही। खीसें
निपोरते हुए और
सूरज के साथ बन गये
अपने सहज रिश्ता को
भुनाते हुए।

आसान है
देहलीज स आंगन तक दौड लगाते
घरेलू ठहाकों को देखना। छूना। लेकिन
मैं किसी कतार म हू। राशन की
या बस की या ऐसी ही कोई और।

सदियो से। पसीने की
नदी म बाढ आयी हुई है। और
कविताए
असहाय बही जा रही है। मैं
किनारे पर खडा
सिर्फ यह सोच रहा हू कि आज तो
चीनी लेकर ही जाऊगा। यह
कोई सकल्प नही

एक चीख है। और
यह चीख एक साँचा है
जिसम
मेरा वतमान ढल रहा है।

1 8 74

फूल (एक)

फूल
इ तजार करता है
एक मदद हाथ का
        मच प आन के बाद

लेकिन
अक्सर
परदा
उठन स
पहले ही

पसीने और मिटटी म
लथपथ होकर
हाथ

सब कुछ भूल चुका
होता है
फूल क बाबत।

23 5 79

फूल (दो)

दोपहर मे
लोग
बड़ा सा पेड़
ढूढते है
और
फूल
निपट अकेला हो जाता है।

छाह की बुनावट मे
फूल की
कोई भूमिका नही होती।

23 5 79

फूल (तीन)

जड़ों को पहुँचती हुई
एक आग होती है
और फूल होता है

सूरज को देखता हुआ

और सूरज होता है
फूल को देखता हुआ

और दोपहर होती है
इसलिए सारे दिन
चरमराते लगते हैं

शाम होने में कई कई
सदियाँ बाकी होती हैं

फिर भी
फूल
इंतज़ार करता है
उसका

तब तक
इंतज़ार
करता रहता है

जब तक
वह फूल

फूल रहता है।

23 5 79

पत्थरों में गोताखोरी (एक)

पत्थरों में कहीं बहुत गहरे
गोताखोरी करता हुआ

यह

मिट्टी टोहता है।

लहूलुहान
उंगलियों से
एकाध भी जड़ छू लेता है
तो
उसकी आंखें
हरी कोंपलों की तरह
झूमने लगती हैं।

पत्थरों की सतह पर
धूप है
तपती हुई बेज़मीनी है।

18 5 80

पत्थरों में गोताखोरी (तीन)

पत्थरों के भीतर
गोताखोर पाता है

कि संगीत के बावजूद
कि रिश्ता के बावजूद
कि वक्त के बावजूद

यह
अकेला है

और
उसके
अकेलेपन को
भी

पत्थरों में
गुजारा जा रहा है।

18 5 80

पत्थरो मे गोताखोरी (चार)

एक सुदर फूल
पत्थरो के किनारे
रखता हुआ वह

प्रार्थना करता है

छूता है
पत्थरो की सतह
हाथ से
फिर माथे से

और
समुद्र म लेटा
उसका इतजार
करता ईश्वर
मुह बाय
अचम्भा करता है

गोताखोर
पत्थरो म
उतर जाता है

फूल
वस ही
पड़ा रहता है

वह साक्षी है।

18 5 80

यही समय है—प्यार !

—पाब्लो नेरूदा

कविता की ओर

कविता इन्तजार कर रही है।

हमारी वाटर-बोतल में
चायदानों के मीठे, ताजे, साफ पानी का
वजन है। फिर

हम उस पहाड़ में मांगकर लाये हैं
जो
हमारी
दकसोमी तट शोभा है।

हम
वाटर-बोतल से एक घूंट भरते हैं
और
अपने अपने जिस्मों को
एक-दूसरे की आंखों से देखते हैं।
फुसफुसाते हैं—'कविता
इन्तजार कर सकती है।'

रात दोपहर में विलय हो रही है
जिस्म
हमारे भीतर
सुबह की लाली हो रहे हैं।

हम
तेज-तेज चलने लगते हैं

जिस प्यार
कविता हमारा इंतजार कर रही है।

20 5 75

पुकार

तुम कहाँ हो ?—मैंने

आज
ठीक तुम्हारी ही तरह
कपड़े पहने थे। लेकिन

तालाब था
कि लाजवाब ही रहा। नीले
आसमान की तरह उसका पानी।
एकदम लहर हीन।

हर वक्त शाम है। खूबसूरती की मिसाल
हो जैसे। और
तुम नहीं हो। मेरी

कविताएँ अब भी तुम्हारे लिए
जगह छोड़कर चलती हैं।

25 11 72

मेरी परछाईं

ठीक हाथों में मेरे

मैं

कि जैसे वो पहाड़, वो बादल, वो पेड़,

सवेरा भी
मेरे हाथों में,

झांकता हूं,
कि देखता हूं

तुम

कि जैसे मेरा शरीर, मेरा समय, मेरा संसार

और
उनके पीछे
उनकी परछाईं की जगह
मेरी परछाईं ।

ठीक हाथों में मेरे

मेरे साथ
मेरे पीछे पीछे
चलती हुई ।

24 4 80

याद (एक)

तपती और तपाती दोपहर में
        एक साफ, ठण्डे पानी से भरा हुआ लोटा,
उमस भरी रातों में बहुत-बहुत करवटें लेने के बाद
        अपनी पसन्द की ब्राण्ड वाली कोई सिगरेट
किसी अनजान शहर के किसी मोड़ पर
        अचानक दीख जाने वाला कोई लंगोटिया दोस्त चेहरा

ऐसी ही कुछ होती है तुम्हारी याद। और
        उसका वजूद महसूस करता हूँ मैं
                अपनी ही बेवजह मुस्कानों में।

12 5 75

याद (दो)

आप
जेल की कोठरी में
आसमान देखते हैं
हरा पौधा देखते हैं
उजाला देखते हैं
और

बेकाबू होते
अपने आपे को
भरसक काबू करते हुए
नजरें फेर लेते हैं। मैं ठीक

इसी तरह
उसकी याद करता हूं
और फिर नहीं करने
की कोशिश में
और और करता हूं। करता ही
चला जाता हूं।

12 5 75

बीच में समदर

शाम का इस कदर और दौरा है
कि सुबह भी
शाम का और
मेरे
आसमान में
नहीं आती।

शाम

जब
मैं अपने ही जिस्म में
दुबक जाता हूँ
और
रंग बदलने
रंगारंग आसमान को देखता हूँ।

बीच में समदर होता है।

और
उसकी पछाड़ खाती लहरों में
तुम्हारी
गुहार।

मैं सुनकर भी नहीं सुनता।

समदर के उस पार
तुम होती हो

और सुबह होती है ।

15 5 75

उपाय

अंधेरे के खिलाफ होता हूं मैं जब
मेरे पास एक ही उपाय होता है
तब
अचूक

और
वह

तुम हो।

तुम्हे मैं रोशनी की तरह इस्तमाल कर लेता हूं।

और
जब कभी
रोशनी की दुनिया
खिलाफ हो जाती है
मेरे

तो
मैं
तुरन्त
तुम्हारे जिस्म से
अपने जिस्म को
एकमेक करते हुए

एक
निजी ग्रंधकार
रच लेता हू
ग्रासपास ।

23 5 75

सृष्टि का पहला क्षण

मैंने दीवार को छुआ—वह दीवार ही रही। मौका
देखकर हिफाजत करती या रुकावट बनती।
मैंने पेड़ को छुआ—वह पेड़ ही रहा। एक दिन
ठूंठ या जान की प्रक्रिया में हरा भरा लहलहाता।
मैंने आकाश को देखा—वह आकाश ही रहा। एक
समझ में न आने वाला पहेली विस्तार।
मैंने समन्दर को देखा—वह समन्दर ही रहा। पहली ही
नज़र में आने और डूब जाने का निमंत्रण देता।

मैंने तुम्हें देखा और छुआ—और तुमने मुझे

और सृष्टि का पहला क्षण
दुबारा आकार लेने लगा
हम कुछ और ही ज्यादा
'मैं' और 'तुम' बनता हुआ।

12 5 75

मुसीबत की घड़ियो मे

तुमने
मेरे बावजूद
मुझे प्यार किया है
1975 के बावजूद
किया है मुझे उम्मीदो से लबरेज़।

अमानवीयता के कैनवॉस पर
मानवीय खूबसूरती का चित्रकार रही हो—

इस घनघोर अंधेरे म भी
मेरी यात्रा दिशाओ को दृढ देने वाली
कितना कितना शुक्रगुज़ार हू मैं।

कि ऐसे कविता आतक समय मे भी
तुमन
मेरी कविताओ की दुनिया को मुमकिन
बनाये रखा है।

जब भी कभी
नही होगा कोई वष
1975 जसा

तो किस कदर याद आयगा मुझे
मुसीबत की घडिया म किया गया
तुम्हारा यह प्यार।

14 11 75

जिस्म और सपने

तुम्ही बताओ—
कहां ढूंढें जगह ?
आड कहां मिलेगी ?

घर मकबरा बन चुका है।
पत्थर की मुर्दा आंखों के पीछे
तानाशाही नजर चौकन्नी है
चौबीसों घण्टे।

पार्कों में परेड हो रही है। नदी किनारों पर
चांदमारी। ताजमहल को
'एन्क्रोचमेण्ट हटाओ' अभियान के तहत
तोड़ दिये जाने का प्रस्ताव
विचाराधीन है।

तुम्ही बताओ—
कहां है कोई जगह
हमारे सपनों के अलावा ?

कहां है कोई आड
हमारे जिस्मों के अलावा ?

2 12 75

बचाव

रुको—
कि कैसे घूम पायेंगे हम
हमारे हाथ कट चुके हैं।

चाकू
उसी के हाथ में है
जिसके मुँह खून लगा है।

झुको—
जरूरी है कि हम अपनी
परछाइयों के साथ गड्मड हो जायें

अगला वार
पता नहीं कब
और पता नहीं कहाँ होगा ?

4 12 75

एक अंधेरी बातचीत

चांदनी से लबालब
आसमान

के
साथ
जमीन

के
साथ
हम
और हमारी नजदीकी

और
फिर भी
प्यार की जगह
सिर्फ एक अंधेरी बातचीत—हमारे बीच—

'कब खत्म होगा यह कराल काल ?'
'अगले साल—किसी न किसी साल तो ।'

30 12 75

हासिल कर लेता हू

आप भीतर पहुचते है और पाते हैं कि यह कमरा
तो आपका नही है।
आप हडबडा कर बाहर आते हैं और पाते हैं
कि यह आगन भी आपका नही है।
और फिर मोहल्ला, शहर, मुल्क और दुनिया
कुछ भी आपका नहीं रहता।

तो आप क्या करते हैं ? मैं तो उसे
अपनी बाहो मे भर लेता हू और
इतजार करते हाठो को
अपने होठ सौंप देता हू
और—
फिर से हासिल कर लेता हू—

अपने को और अपनी दुनिया को।

12 5 75

प्यार का वक्त

वह
या तो बीच का वक्त होता है
या पहले का। जब भी
लड़ाई के दौरान
सांस लेने का मौका मिल जाय।
उस वक्त

जब
मैं
तुम्हारी बंद पलकें बेतहाशा चूम रहा था और
हमारी
दिन भर की लड़ाई की थकान
खुशी की सिहरनों में तब्दील हो रही थी। और
हमारे हाथ
एक-दूसरे के अंगों पर फिरने के बहाने
एक-दूसरे की पोशीदा चोटों को सहला रहे थे।
उस वक्त

कहीं, कोई नहीं था। न बाहर, न भीतर। न
दिल में, न दिमाग में। न दोस्त, न दुश्मन। सिर्फ

हमारे जिस्म। ठोस, समूचे और जिंदा जिस्म।
सांपों के जोड़े की तरह
लहरा लहरा कर लिपटते हुए। अंधेरे से
फूटती हुई
एक रोशनी
जो हर लहराने को

जब हम तुम मिले (एक)

तैराक को
बहुत—
बहुत दिनों के बाद—
कोई लहर-भरी नदी
या दर्पण-पानी वाला गहरा तालाब
मिले

और वह
पहले तो मुग्ध लुब्ध देखे तो देखता ही रहे
और धीरे धीरे कपड़े उतारे—धीरे धीरे पानी में उतरे—
और आँखें मूँद
महसूस करे—पानी का सुहाता पानीपन और
नस-नस का परिचित खुलना—

और
जब आँखें खोले तो सुख को साकार देखे—
और देखे—दूर   और दूर होता किनारा—
                                        और बहुत

बहुत थक चुकने के बाद ही
अजनबी हो चुके अपने शरीर से
पुनर्पहचान करे—और उसे साथ लिए लिए
किनारे की ओर लौटे—कुछ इस तरह।

3 4 77

जब हम तुम मिले (तीन)

जब हम-तुम मिलते हैं
तो ऐसा लगता है कि 'कहा जाना है' भूल

हम
बीच म ही
किसी अजनबी स्टेशन पर उतर पडे हैं। और
हमे वहा तक लाने वाली गाडी
जा चुकी है

हमारा मिलना
अक्सर ही या बीतता है
कि या तो पटरिया को घूरते रहो
और उन्ही के सहारे क्षितिज को—
या पटरियो की ओर न देखने मे मुब्तिला रहो
और इसलिए क्षितिज को भी नही—

और पटरियो और क्षितिज के बीच
वह
अजनबी स्टेशन
हमेशा ही अजनबी बना रहता है। हमारे लिए।

जबकि
उतरते हम
उसी जाने पहचाने स्टेशन पर हैं
हर बार।—जब भी हम तुम मिलते है।

3 4 77

जब हम तुम मिले (दो)

जब हम तुम मिले
सो बातें बहुत थी—जो हमने नही की—न करेंगे—
काम भी
एक दूसरे को एक दूसरे से
कई थे—जो हमेशा ही रहते हैं—
और जो हमेशा ही नही किये जाते।

कामा और बातो के पर हम
एक माध्यम म ढलकर रह गये थे—
कि हमारे जरिए एक खामोश सगीत
बजने लगा था—और हम देखते न देखते
आकाश के खुलेपन के माता पिता थे

उसके बाद
हमारी गोदी म
खेलता बच्चा ही सहारा था—हमारे लिए—
एक दूसरे के पास पहुचने
और एक दूसरे को पाने का।

3 4 77

जब हम तुम मिले (तीन)

जब हम-तुम मिलते हैं
तो ऐसा लगता है कि 'वहा जाना है' भूल

हम
बीच मे ही
किसी अजनबी स्टेशन पर उतर पड़े हैं। और
हमे वहा तक लाने वाली गाड़ी
जा चुकी है

हमारा मिलना
अक्सर ही या बीतता है
कि या तो पटरिया को घूरते रहो
और उन्ही पे सहार क्षितिज को—
या पटरियो की ओर न देखने मे मुब्तिला रहो
और इसलिए क्षितिज को भी नही—

और पटरियो और क्षितिज मे बीच
वह
अजनबी स्टेशन
हमेशा ही अजनबी बना रहता है। हमारे लिए।

जबकि
उतरते हम
उसी जाने पहचाने स्टेशन पर हैं
हर बार।—जब भी हम-तुम मिलते हैं।

3 4 77

जब हम तुम मिले (चार)

हमारा मिलना
क्या कोई जादू है ?

कि दीवारें वे ही ग्रौर वैसी ही
रहती है—खाइया भी बीच मे
वे ही ग्रौर वैसी ही।—ग्रौर

फिर भी हम-तुम मिलते है
तो नही सोचते कतई
कि दीवारा ग्रौर खाइयो
के बावजूद कैसे मिल लिए ? समदर

जर खरीद गुलाम-सा
पैरा को धोने लगता है। सूरज
इशारो पर
उगता है—डूबता है। हम
एक-दूसरे के
ग्रौर इस तरह पूरी दुनिया के
शाहनशाह की भूमिका म
वक्त को
एक लम्बे घूट मे गटक जाते हैं—लेकिन

फिर
थोडी ही देर बाद
बच रहते हैं—

खाइयों और दीवारों के पार
रोते सिसकते भीकते—दो अदना जीव।

तो यह क्या सब जादू होता है
जो हम तुम मिलते हैं ?

3 4 77

आईना होते हैं—दोस्त

खुद अपनी ही प्रतीक्षा मे

एक

अधेरे मे आईना और तुम

कमरे मे तुम हो और आईना है।
तुम भी आदमकद हो और आईना भी।
कमरे मे अधेरा है और तुम दोनो अधेरे मे हो।
फिर भी तुम उसके सामने खड़े हो क्योकि उजाला
तुम्हारा जातीय अनुमान है।
तुम आईने को टटोलते हो, सहलाते हो और
इस तरह उसके ठण्डे चिकनेपन को उगलियो
के पोरो पर झेलकर भविष्य को भरोसे
के काबिल बनाते हो।
अधेरे को बर्दाश्त करने की कोशिश मे खुद
को उसमे घुलाते हो लेकिन बार बार
पूछते भी हो—'रात कितनी बाकी है ?'

क्या रात की तरह खड़े रहोगे ?
सुबह तक ?
अगर सुबह नही हुई तो ?
तुम्हारी सुबह ?
तुम्हारे कमरे मे ?
तुम्हारे कमरे की सुबह नही हुई तो ?

दो

मौत के कान नही होते

अधरा है
और तुम्हारे हाथ म कलम है

तुम उस आईने की जगह
इस्तमाल करते हुए
हवाओ पर
खुद को
सपन की तरह लिखते हो।

और
कविताए लगातार वहा बरसती हैं
जहा
कभी तुम
अपन बचपन के उजले समारोह थे
और
जिसमे बीतते न बीतते

तुम
अपन म
नमक की तरह यो घुल गये थे
कि चिडिया
कि नदी
कि पहाड ऐसे बहान हैं

जो
दरअसल तुम्हारी गुहार है
कमरे के
अंधेरे कोना से
टकरा टकरा कर लौटती हुई।

जबकि
अकेलापन मौत नही होता।
हो
तो भी
मौत के कान नही होते।

तीन

बदी समुद्र के बदी तुम

समुद्र हमेशा एक घेरे में होता है।

तुम कहते हो
'बिचारा समुद्र बदी है।

अपने कमरे का समुद्र
हरेक का केन्द्र होता है।

लोग
उसे देखकर
चिडियाघर मे देखे
खूखार शेर की याद करते हैं।

कोई भी
अपने कमरे मे
समुद्र को बदी देखना
नही चाहता।
न तुम चाहते हो।

लेकिन
यह
तुम्हारे कमरे में है
इसलिए
कमरे का बदी है।

लेकिन
यह
तुम्हारे और दुनिया के बीच में है
इसलिए
तुम उसके बन्दी हो।

बंदी की इच्छाएं
और
उसके खयाल
यहां तक
कि वह खुद भी
एक छलांग होता है
—ख्वाबों के ऐन बीच में।

हर बंदी
एक मुजस्सिम ख्वाब होता है
आखिरकार।

चार

शर्तों का गणित

तुम्हारी रात तुम्हारा कमरा है
तुम्हारे कमरे की रात
यह अंधेरा है
जो
उसी की औलाद है
तुम्हारा कहना यह है
कि दुनिया
तुम्हारी शर्तों पर ही
तुमसे मिल सकती है।

तुम
यह भूल जाते हो
कि दोस्त
तुम्हारे कमरे में नहीं जनमते।

दुनिया में होते हैं
और
वहीं से
तुम्हारे कमरे में आते हैं
और
वे कोई शर्त नहीं मानते।

दुनिया की अपनी शर्तें होती हैं।
जिसके तहत
तुम्हारा कमरा मुमकिन होता है।

तुम
अपने कमरे में हो
फिर भी दुनिया में हो।

शर्तों के इस गणित ने
तुम्हारे होने को
तुम्हारी ही नज़र में
संदिग्ध बना दिया है।

पाँच

सुरक्षा के करतब

कमरा
तुम्हारे लिए
एक सम्पूर्ण सुरक्षा है।
सदा सुरक्षित रहने की चिंता
तुम्हें असुरक्षित करती है।
तुम
अपने से बाहर रहने को अभिशप्त हो
क्योंकि तुम
सदा सर्वदा
अपने कमरे के भीतर रहना चाहते हो।
कमरे में बैठे आदमी के लिए
सब बराबर है

पार्वरिक लाठीबाज हो या औरतों की मायाजाही
या फिर
खुद का दफ्तर आना-जाना और घर पर सो जाना

नज़र
सिर्फ अपने पर रहती है
और
इस पर
कि अपना ही हुक्म बराबर माना

'जागो, उठो, सो जाओ, जाओ का
बिना किसी हील्   के सब

सुरक्षा की चिंता
आदमी को कच्ची बना देती है
और
वह उस आकाश के लिए
खतरा हो जाता है
जिसे
जिन्दगी और दोस्त मुहैय्या करते हैं

कमरे में समन्दर होता है,
फिर भी
आकाश
जब तब
सितारों से

तुम्हें
छू लिया करता है।

छह

खुद अपनी ही प्रतीक्षा में

अभी तो तुमने
अपने को
टास के लिए उछाला है—

अभी तो
हवा में हो
जब
जमीन पर गिरोगे
तो
पता चलेगा
कि कविता की जीत हुई है
या तुम्हारी ?

तभी
तुम
ज्यादा तुम हो पाओगे—
ज्यादा फूल, ज्यादा फसल ज्यादा नदी
ज्यादा पेड़—

अभी तो
एक प्रतीक्षा हो
खुद अपनी ही

जो तुम कर रहे हो—
अंधेरे में अपने कमरे में आईने के सामने,
हाथ में कलम लिए—

12 1 79

गोया आईने मे चले गये हो

जहा
    तुम खडे हो
        इस वक्त

जहा
    तुम चलते थे
        कभी

वहा
अब भी एक रास्ता है

तुम्हारे
पैरो के इद गिद
    उग आये
सस्मरणो के नीचे।
एकमात्र नियत रास्ता !
तुम्हारे लिए ! !

सस्मरण
    पीले पड गये हैं
        झर रहे हैं
            धूल मे।

और
    तुम्हें भरोसा है
        कि वे फिर उगेंगे
            फिर फिर उगेंगे

ग्रौर
इसलिए
तुम
उनकी जडा म
मटठे की जगह
ग्रद्वितीय ऊर्जा सीचते हो

देखो तो सही
ग्रपने को—

ग्रतीत ग्रौर भविष्य
के
दो पाटो के बीच

टूटते फटते पिसते
हुए भी
नही सोच पा रहे हो

फि
नदी
किनारा के बावजूद
ग्र
के
ली
होती है।

तुम
ग्रब
नही ढूढ पाग्रोगे
कभी

ग्रपनी भूतपूव शाम। बच्चो
के
चेहरो
पर

तो
सुबह हो रही है।

और
  वे
    तुम्हारे
      पितृत्व के धुंधलके में भी
        खुली तलवारों-से चमचमा रहे हैं।

उन
बच्चों का
बच्चे होना भर
तुम्हारे
गुम
हो चुके
रास्ते को
रास्ता साबित करेगा।

फूलों का फूलपन
कभी
दीवार नहीं था।
    तुम्हारी उंगलियों के लिए।
      और फिर—

बच्चों की तत्परता तो देखो
कि
वे
तुम्हारे
संस्मरणों को
एक छलांग में
पार कर जाना चाहते हैं।

कितने असंग हो गये हो तुम !

अपनी
  लरजती

घनघोर देह के प्रति
लापरवाह
गोया आईने मे चले गये हो
हमेशा के लिए !

फैसलो का वक्त आ गया है—

और
अगर
अब भी
अपने सपनो को
शब्दो मे
बदलते रहोगे

तो
पाओगे
एक दिन
कि
तुम्हारी स्वप्नहीन आख
पतझर मे गिरे पत्ता की तरह
हवा के साथ उड रही है—

तब तो
और भी
नही देख पाओगे

कि
तुम्हारे कधो पर
सिदबाद की कथा वाला
शैतान नही

बल्कि तुम खुद हो
अपने बेटे मे
खिलखिलाते हुए।

पावो मे

पत्नी नहीं
बल्कि तुम्हारे ही दिमाग की
वह
पतली नस
लिपटी है

जिसे
तुमने कभी
बतौर सुरंग इस्तेमाल किया था
श्रौर
श्रास्थाश्रों के
श्रनुमान लक्ष्यों का
छून लगे थे

फिर क्या हुश्रा था ?
मैं नहीं
तुम्हारा
निरपराध रक्त प्रवाह
प्रश्न करता है

कि सारे के सारे
विम्बों का तहस नहस कर बैठे
श्रौर
श्रपना ही
रास्ता रोक
श्रलमस्त साँड के मानिंद खड़े हो गये।

तुम
जो
संगीत थे
इसीलिए विद्रोह थे
श्रौर
इसीलिए
हर उस श्रादत के खिलाफ थे
जो चुप रहना सिखाती है।

फिर क्या हुआ था ?
मैं नही
तुम्हारा उत्तर धर्मी
प्रश्न ससार पूछता है

कि लालची आवेगो के
कमीन फुसलावे मे आकर
एक
ऐसे
तारीख-बाहर
सिक्के मे ढल गये
जिसके
एक ओर
    मृत्यु मौन अंकित है

तो
दूसरी ओर
जीवन हीन शोर शराबा ।

तुम
एक जरिया होकर रह गये हो
निजी विस्फोटो की
मनमानी आपाधापी के लिए ।

नतीजे मे
तुम्हारे पैरो के एन नीचे की जमीन
ऊची उठती चली गयी है
मीनार बन गयी है

और
तुम
देखने लगे हो
सुदूर
    नीचे
सभी ओछे

सभी टुच्चे
सब के सब नमक-हराम

दिखायी देते
हर चलायमान धब्बे में
आदमी नहीं—उसे।
जो
कभी आदमी नहीं होता
तुम्हारे लिए
शर संधान का
        एक टारगेट होता है।

तुम्हारी
एक्स किरण निगाहें
                तुम्हारे
अकेलेपन को
वेधकर भी
तुम्हें
देखती रहती हैं
लगातार
फिर भी
नमक-हलाली में
कुछ नहीं कहती

उन
खाइयों के बारे में
जो
तुम्हारे
शब्दों से सरककर
चुपके से
वहां बिछ गयी हैं
जहां
तुम
अपने का
समारम्भ करना चाहते थे।

देहलीज को
सैंकडो हजारो बार
लाघकर भी
तुम

लाट गये
ग्राखिरकार
उसी घर मे। जहा की
दीवारा म
तुमने
कभी
अपनी
हृ
ड्डि
या
चुनवायी थी।

एक साथ
अपन को छोडकर
सब कुछ होते हुए
तुम
उस
देवदूत की तरह
लगत हो
जो
ग्रब
घरेलू हो गया है।

अपनी तकलीफा को बजाता हुग्रा
फडफडाता हुग्रा

नही देख पाता
कि सार के सारे लोग
—तुम्हारे ग्रपन लोग

वहा चले गये हैं
जहा तक
अभी
तुम्हारी पतग पहुची थी
उड़ते हुए

और कट गयी थी।

अपने को देखो—

तुम्ह तो
अब तक
वहा होना चाहिए। था
जहा
नीव पड रही है—

आईने से बाहर आओगे
तो पाओगे

कि तुम किसी भी उपमा रूपक से
कही ज्यादा कविता हो।

20 9 78

मेरे सामने है वह !

ब्लैक-मेलर

(एक)

वह मेरे सामने है। इसी वक्त भी। हालांकि बहुत पानी
बह चुका है। नदियों में। उस बात के बाद।

जब
मेरे भीतर मेरे औसत हिन्दुस्तानी
होने ने ज़ोर मारा था।
मैंने अपने ही घर की छत को नकारा था। एक
मकानी आकाश को स्वीकारा था। कमरे की
खिड़कियां बन्द करके खुद को
सनातन क्रांति घोषित किया था। मां के बूढ़े
जिस्म की तुलना भारत माता से की थी और
दोनों को रद्द कर दिया था।

और
तभी मुझे वह
पहली बार दिखा था—

खूंटियों पर कपड़ों की तरह टंगा। ठंडे चूल्हे में
राख की तरह बिखरा। मां की पलकों को
बेजान बनाता। पिता के होठों पर एक गिलगिली
मुस्कराहट पैदा करता। पत्नी
की [illegible] में मुर्दनगी भरता।

[illegible] था। मेरी
[illegible] पर उंगली रख रहा था। इशारा
[illegible], जहां मैंने
[illegible] गीता प्रेस वाले गुटके पर

(दो)

वह
घूरता, ठहाके लगाता, गरजता और कहता
'जवाब दो। आखिरी जवाब।'

मैं चुप से भी ज्यादा जवाबहीन हू। लेकिन
मेरे सन्न चेहरे के पीछे सोच का
एक समदर खलबला रहा है। मथन हो रहा है। मेरा
अतीत सुमेरु पवत है तो वासुकि
मेरी चिन्तन नक्ति। दोना सिरो पर
मैं ही हू। जो
रत्न निकलता है वह एक पुरुष
होता है। पेरी मेसन! उसकी
धीर गम्भीर वाणी
किसी भी ब्लैक मेलर से निबटने के
तीन उपाय बतलाती है। किस
पर अमल करू?

पहला?
उसकी माग पूरी कर देना?
हरगिज नही। मुझसे कविता के छूटने का मतलब
होगा नदी से उसके बहाव का छूट जाना, दूब से
हरेपन का नाता टूट जाना। मेरे
शरीर के तापमान का जीरो डिग्री तक
उतर जाना। नजरो की समूची हदो मे
मौत ही मौत का पसर जाना।

फिर?
दूसरा?

कापका का उपन्यास रख छोडा था या याद
दिला रहा था उस दिन की, जिस दिन मैंने
छोटे भाई की वर्षगांठ पर डेलकारनेगी की किताबें
दी थी और इस तरह उसका ध्यान सासारिक
सफलताओ की ओर मोडा था। और

तभी स
यह कभी भी मेरे सामने आकर
खडा हो जाता है। मुस्कुराता। खासकर तब

जब
मैं कविता के साथ होता हू।—लिख रहा
होता हू तो निब या पेंसिल की नोक बन जाता है। सुना रहा
होता हू तो श्रोता और अगर सिर्फ सोच रहा
होता हू तो
कनपटियो की नसो म तब्दील हो जाता है।

(दो)

वह
घूरता, ठहाके लगाता, गरजता और कहता
'जवाब दो। आखिरी जवाब।

मैं चुप से भी ज्यादा जवाबहीन हूं। लेकिन
मेरे सन्न चेहरे के पीछे सोच का
एक समंदर खलबला रहा है। मथन हो रहा है। मेरा
अतीत सुमेरु पर्वत है तो वासुकि
मेरी चिंतन शक्ति। दोनों सिरों पर
मैं ही हूं। जो
रत्न निकलता है, वह एक पुरुष
होता है। पेरी मेसन! उसकी
धीर गम्भीर वाणी
किसी भी ब्लैक मेलर से निबटने के
तीन उपाय बतलाती है। किस
पर अमल करूं ?

पहला ?
उसकी मांग पूरी कर देना ?
हरगिज नहीं। मुझसे कविता के छूटने का मतलब
होगा नदी से उसके बहाव का छूट जाना, दूब से
हरेपन का नाता टूट जाना। मेरे
शरीर के तापमान का जीरो डिग्री तक
उतर जाना। नजरों की समूची हदों में
मौत ही मौत का पसर जाना।

फिर ?
दूसरा ?

कोई फायदा नही। कि ऐसी
कोई पुलिस नही है इस दुनिया मे
जो उसे पकड़ सके और

सज़ा दे सके।

तो फिर ?
तीसरा ?

ठीक है। यही मुझे जचता है। न रहे बास और
न बजे बासुरी। मेरी
आखें लाल होने लगती हैं। दिमाग
भनभनाने लगता है। योजना
बनाने लगता हू कि कैसे ? और कब ?

और
तभी वह एक आवाज फाड़ ठहाके के साथ
प्रकट हो जाता है। उसकी
आखो म एक पत्थर क्रूर चमक कौंधती है।

— नही। तुम मेरी हत्या नही कर सकते। देखो।
मेरी ओर देखो। मैं कौन हू।'

और
तब मैं उसे एक बार फिर पहचानता हू। और
एक अतल गहराई म गिरने लगता हू। जिस्म
के ठण्डेपन को सहने की
एक नाकामियाब कोशिश म
मुब्तिला हो जाता हू। और

मेरे ललाट से चूते पसीने की धारो मे से
उसकी आवाज उभरती है—

तुम मुझसे बच नही सकते। आज
नही तो कल—तुम्हें जवाब देना ही पड़ेगा। फैसला
करना ही पड़ेगा। कल—'

मैं कुछ कहने की कोशिश मे
बुदबुदाता हू लेकिन दरअसल चीखता हू।

और उसके जा चुकने पर भी मैं
चीखता ही रहता हू

कल—कल—कल।

(तीन)

डर !
मेरे लिए कोई आवेग या भावना नहीं है बल्कि अलादीन का
चिराग है, जिसे छूने भर की देर है और वह
हाजिर हो जाता है। निमित्त
याद होती है। हमेशा। जैसे

मैं कमरे में हूं। और याद आता है कि पहली बार
वह मुझे खूटी पर या चूल्हे पर दिखा था। इन्सानी
फितरत के तहत नज़रें उस ओर उठ जाती हैं और
मैं पाता हूं कि वह वहां है मुस्कुराता। मुझ पर
कोई घटिया फब्ती कसता। मैं
एकदम बेचारा होता हूं कि वह एक बढ़िया

ब्लैक मेलर भी तो है। मैं
जब जब पूरी कोशिश के साथ उसे याद
नहीं करना चाहता, तब तब वह 'मेरे आका' कहता हुआ
जिन्न की तरह हाजिर हो जाता है। अलादीन
भी क्या मेरी ही तरह था ? चिराग का गुलाम !

(चार)

तुम !
कविता के नाम पर सुरक्षा-खाई
खोदने वाले
राशन-तेल के सवाल पर तो बीवी के सामने
घिग्घी बंध जाती है

लेकिन जब देखो तब
क्यूबा वियतनाम की बातें खोदने वाले
पब्लिक गॉर्डन मे मुरझाते फूलों की फिक्र म
दुबले होते रहते हो लेकिन
अपने कमरे की दीवारों का उखड़ता पलस्तर
दिखलायी नही देता
अकाल भुखमरी को टाइम्स आफ इण्डिया के
जरिए जानते हो
दो चार आसू भी बहा लेते हो
फर्ज के नाम पर
लेकिन उसके बाद ! —दिन दोपहरी म भी
शहर के सबसे ज्यादा
व्यस्त चौराहे पर स्थित होटल म बैठकर
अनुपस्थित अधर की शिकायत करते हो
खिलाफत करते हो

एक पल का भी तुम्हारा उत्साह
अपने गरेबा मे नही झाकता
आराम की सास नही लेता

'जनता' को कमर-तोड गठरी की तरह
पीठ पर लाद रखा है और
बीबी के गम पहलू म सराबोर होते वक्त भी
उसे नही उतारते

खादी की सफेद झक पोशाक के बावजूद
लाल नकाब डाटे रहने वाले तुम
कभी भूले भटके भी तो
अपनी खोई हुई दुम नही गुहारते

तुम तुम
कुत्ते की नही।
हवा का रुख देखकर टेढी या सीधी
होने वाली
हि दी लेखक की दुम
तुम।

(पाच)

मैं उसे देखता हू—

चीता बहुत शातिर होता है।
दबे पाव बढता हुग्रा
कब किस ग्रोर से शिकार पर
झपट पडेगा
कोई नही जानता।

मैं उसे देखता हू —

भारतीय प्रजातन्त्र का हू हू करता
भारवान, तोंदवान मन्त्री
कब कौन सी बेतुकी बात
कहा बोल देगा—
कोई नही जानता।

मैं उसे देखता हू—

साप कहा ? शैतान कहा ?
गज की मौत कहा ?
जहा नाम लो
वहा।

मैं उसे देखता हू—

बर्फ गलती है लेकिन नही गलती।
जमीन हिलती है लेकिन नही हिलती
ग्राखें ब द कर लेता हू लेकिन नही करता।
एकाएक मर जाता हू लेकिन नही मरता।

मैं उसे देखता [illegible] —

खूबसूरत स खूबसूरत जगल म आग
लग सकती है
अफीम खाकर सोयी हुई बीमारिया
जग सकती है।
अभी अभी हसता हुआ मैं अभी अभी
रो सकता हू।
जो जो नही होना चाहिए वह वह सब
हो सकता हू

मैं उसे देखता हू—

(सात)

वह
किस वक्त और कहा मेरे साथ हो जायगा ?
नही जानता। इतना तो तय है कि वह
ऐसा कोई मौका नही चूकता जो मेरे लिए
महत्व रखता है।

तेलगाने का जुलूस निकल रहा था और वह
मेरे साथ था।
विद्यार्थियो और मजदूरो पर गोली चल रही थी और वह
मेरे साथ था।

नक्सलवाडी और श्रीकाकुलम मे सरकारी ताकत को
मुह तोड जवाब दिया जा रहा था और वह
मेरे साथ था।

अकाल के वक्त, बाढ के वक्त हडताल के वक्त
गर्ज कि हर अहम मौके पर वह
मेरे साथ होता है।
मैं उठने को होता हू कि वह अपने फौलादी पजे से।
मेरी कलाई थाम लेता है

—कहा जा रहे हो ? पहले जवाब दो। फिर जाना—
और मैं कुर्सी पर ढेर हो जाता हू। वह
मेरी उन सारी कविताओ की चिदिया कर

देता है, छितरा देता है, जिनमे
उसे एक भी चिगारी नजर आ जाती है। मैं

सिर्फ तमाशबीन होता हू। मूक। इन
सारी अनैतिहासिक दुर्घटनाओ का।

(आठ)

वह
रात था। अंधेरा था। सलाखें था। पैरा
की गूंजती आवाज़ था। जब मैं
जेल में था। वह
मेरे साथ था। चारों ओर था। बल्लु
और मेरे बीच था।

—'कहिए क्या हालचाल है? आजकल
कविताएं क्यों नहीं लिखते?'

और जब लिखने को होता तो कहता—'यहां भी!
बल्लु से बात क्या नहीं करते? वह
मामूली चोर कैदी है—इसलिए।'

एक दिन तो हद ही हो गयी। बल्लु बोला
—'तुमने ऐसा क्या किया—क्या लिखा पतलु—जो
यहां आया?' मैं घबरा गया।

मैंने देखा। मैंने पाया कि वह बल्लु का
चेहरा बन चुका है।

(नौ)

हत्या की कोशिश नाकाम नहीं होनी चाहिए। वह
बच गया तो दुगुना खूखार हो जायेगा। तो
जरूरी था कि मैं हथियारो की जाच कर लेता। और
कारवाई के लिए मुनासिब हथियार चुन लेता। मैंने

अपने पास के हथियारो पर नजर डाली। कलम
और कविताए। बस ये ही तो!
कलम तो उससे टकरायगी नही कि चूर चूर
हो जायगी। कविताओ
को तो वह फाड फूडकर हवा मे उडा देगा।
सच ?

और मरे घोडे की हड्डियो की गति के लिए
टटोलता
मैं छटपटा रहा हू। कविताओ मे। और
सुनते और पढते लोगो की खुशी
मुझे कही नही छूती।

मैं उसकी गिरफ्त मे हू। और वह
आखिरी जवाब माग रहा है। और मैंने
अभी पहली किश्त भी नही चुकायी। कि कविता
मैं अब भी बराबर लिख रहा हू। लिखे जा रहा हू।

तो क्या वह सचमुच ही यह रहस्य उजागर
कर देगा कि नदी का बहाव नकली है कि दूब का
हरापन सिर्फ ऊपरी पत है कि कविता
एक अनिवार्य हाजत से छुटकारा पाने का
स्वाभाविक नतीजा है कि साहस की क्रांति की—

विद्रोह की धमकी ख़ुरचन पर अक्सर ही
बुज़दिली, ख़ुदग़र्ज़ी और ढिठाई से मुलाकात
होती है। क्या यह
किसी को भी नहीं सोचने देगा कि मेरे बाद के
कौन रह जाने के पीछे मेरे घर की छत, दीवारों
और दरवाज़ों की अच्छी-ख़ासी भूमिका रही है?

ऐसी हालत में भी जो होगा, जानता हूँ। यानि मैं
क्या करूँगा, यह तय है। समझौते की यहाँ कोई
गुंजाइश नहीं। इन हाथों को उसके ख़ून से रंगना
ही एकमात्र नियति है। अभिशप्त हूँ मैं
बनने को। लेकिन अभी तो, इस पल तो
मैं यह कविता लिख रहा हूँ। और यह
निश्चय बना हुआ है। अगले ही पल
मुझ से ये ही जान पहचाने सवाल
लेकिन

और लेकिन—और लेकिन

जितनी कविता अनिवार्य और स्व
मेरी ज़िंदगी में
उतना का उतना ही—यह लै
रत्ती भर है

विद्रोह की चमडी खुरचने पर अक्सर ही
बुजदिली, खुदगर्जी और टुच्चई से मुलाकात
होती है। क्या वह
किसी को भी नही सोचने देगा कि मेरे कद के
बौने रह जाने के पीछे मेरे घर की छत, दीवारो
और दरवाजो की अच्छी खासी भूमिका रही है ?

ऐसी हालत मे भी जो होगा, जानता हू। याने मैं
क्या करूगा, यह तय है। समझौते की कही कोई
गुजाइश नही। इन हाथो को उसके खून से रगना
ही एकमात्र नियति है। अभिशप्त हू मैं हत्यारा
बनने को। लेकिन अभी तो, इस पल तो
मैं यह कविता लिख रहा हू। और वह
मित्र बना हुआ है। अगले ही पल
मुझ से वे ही जाने-पहचाने सवाल पूछने वाला है।
लेकिन

और लेकिन—और लेकिन

जितनी कविता अनिवार्य और स्वाभाविक है
मेरी जिंदगी म
उतना का उतना ही—यह ब्लैकमेलर भी तो है
रत्ती भर भी कम नही।

वेणु गोपाल

जन्म 22 अक्टूबर 1942 करीमनगर (आन्ध्रप्रदेश) में।

प्रारंभिक शिक्षा हैदराबाद में। फिर आवारागर्दियों, यात्राओं और भटकावों से भरे लम्बे लम्बे अन्तराल। जिनमें अयोध्या में रहकर वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित होने तथा संस्कृत अध्ययन करना जुड़ा। दो विषयों में साहित्यरत्न। 1963 में हिन्दी साहित्य और 1966 में दर्शनशास्त्र में। 1968-71 के दौरान औद्योगिक गाँव कागजनगर में अध्यापन। साथ ही मार्क्सवाद का अध्ययन। 1971 में कविता और राजनीतिक गतिविधियों के कारण गिरफ्तारी। बेरोजगारी। 1972 से 75 तक भोपाल में फ्री-लांसिंग। 197*, विदिशा से हिन्दी एम०ए०। आज-कल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद में 'हिन्दी वाम कविता का सौन्दर्यशास्त्र' विषय पर शोधरत।

1970 से नाटकों में रुचि। 1973, भोपाल में श्री बी० वी० कारंत से अभिनय व निर्देशन का प्रशिक्षण तथा उन्हीं के निर्देशन में 'रसगंधर्व' और 'पंछी ऐसे आते हैं' नाटकों में अभिनय। राजेन्द्र गुप्त के निर्देशन में भी दो नाटकों में अभिनय। कविताओं के अतिरिक्त कुछ कहानियाँ और समीक्षा लेख प्रकाशित। 1972 में एक कविता संग्रह 'वे हाथ होते हैं' प्रकाशित।